Chap-3

तृतीय अध्याय :

परिवार के परम्परागत स्वरूप में परिवर्तन के फलस्वरूप पारिवारिक विघटन की स्थितियाँ हिन्दी-गुजराती कहानी के संदर्भ ।

(१) आर्थिक कार्यों में परिवर्तन

(२) धार्मिक कार्यों में परिवर्तन

(३) सामाजिक एवं सांस्कृतिक कार्यों में परिवर्तन

(४) मनोरंजन सम्बन्धी कार्यों में परिवर्तन

परिवार के परम्परागत स्वरूप में परिवर्तन के फलस्वरूप पारिवारिक विघटन की स्थितियाँ हिन्दी-गुजराती कहानी के संदर्भ

I

साठोत्तरी काल में परिवार का रंग रूप बदल गया है। "आधुनिक युग में परिवार के ह्रास का मुख्य कारण उसके कार्यो में परिवर्तन होना है। परिवार के द्वारा किये जाने वाले अनेक कार्य अब राज्य और अन्य संस्थाओं द्वारा किये जाने से परिवार का कार्य क्षेत्र दिन-प्रतिदिन सीमित होता जा रहा है। अन्य संस्थाओं के हस्तक्षेप से व्यक्ति परिवार से कट रहा है और पारिवारिक सम्बन्ध प्रभावित हो रहे हैं।"[1] छठे दशक के बाद की परिवर्तित स्थितियों ने परम्परागत जीवन-मूल्यों को छिन्न-भिन्न कर दिया। इस काल का साहित्यकार समाज के उस वर्ग को कथ्य के रूप स्वीकार करता है जो परम्परागत मूल्यों से मुक्ति पाकर नये मूल्यों को अपनाना चाहता है ताकि वह शोषण मुक्त और प्रगतिशील सामाजिक व्यवस्था की स्थापना में अपना योगदान कर सके। परंतु राज्य के कार्यों से परिवार की स्थिति बहुत ही कमजोर हो गई है। पहले जो कार्य परिवार बखूबी निभाता था, वो आज राज्य और संस्था के द्वारा होने लगा है। पहले सभी कार्यो का केन्द्र परिवार था। तब परिवार का एक मुखिया होता था। आज पिता के स्थान पर एक सीमा तक राज्य के आ जाने से स्थिति बहुत बदल गई है। परिवार का सारा काम राज्य ने अपने हाथों में ले लिया है। उधर राजनैतिक नेता स्वार्थवश बेईमानी में लिप्त रहे। सेवा, त्याग और मूल्यों को छोड़ कर अमीर बनने के 'शोर्ट कट' तलाश

करने लगे और इसके कारण आम आदमी पर आर्थिक दबाव पड़ने लगा और मध्यमवर्गीय जीवन कष्टमय होता गया। दूसरी ओर वैज्ञानिक प्रगति के कारण जनजीवन में बहुत बड़ा परिवर्तन आया। औद्यौगिक उन्नति के कारण महानग आकर्षण का केन्द्र बनते गये। गन्दी गलियों - बस्तियों का विस्तार होता गया। नागरिक जीवन में यांत्रिकता आती गयी। फलस्वरूप संपूर्ण जीवन दृष्टि में आमूल परिवर्तन नजर आने लगा। इस स्थिति को देखते हुए डॉ. भैरूलाल गर्ग लिखते हैं - "अब तक की स्थिति में यह स्पष्ट है कि व्यक्ति स्वातन्त्र्य, बन्धुत्व, मानस-समानता, न्याय, प्रेम, यौन सम्बन्ध ही वे मूल्य हैं, जिनकी ओर नये कहानीकार का ध्यान आकर्षित हुआ है।"[2]

विवेच्य युग में हमें पारिवारिक मूल्य भी बदलते हुए नजर आते हैं। परम्परागत प्रतिमाएँ टूट रही हैं। विवाहित जीवन की रूढ़ मान्यताएँ बदल चुकी हैं। विवाह के परम्परागत बन्धन शिथिल होते जा रहे हैं। पुराने समय में विवाह को जन्म-जन्मांतर का सम्बन्ध माना जाता था। लेकिन आधुनिक युग में विवाह एक सामाजिक समझौता मात्र रह गया है। आधुनिक कहानीकारों ने टूटते हुए पारिवारिक एवं दम्पत्य सम्बन्धों की ट्रेजडी का सूक्ष्म चित्रण किया है। टूटने की यह प्रक्रिया केवल संयुक्त परिवार तक ही सीमित नहीं रही, किन्तु उसने पति-पत्नी, पिता-पुत्र और अन्य पारिवारिक सम्बन्धों को भी अपनी गिरफ़्त में ले लिया है।

परिवर्तन प्रकृति का नियम है और इसे जीवन के हर क्षेत्र में देखा जा सकता

है। आधुनिक परिवार भी परिवर्तन की इस प्रक्रिया से गुजर रहा है। आज परिवार बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य को पूरा करता है। लेकिन वर्तमान स्थिति में उसके कार्यो में बहुत ही परिवर्तन हुए हैं। इसका प्रमुख कारण औद्योगिकीकरण और नगरीयकरण है, जिसके फलस्वरूप सामाजिक ढाँचे में परिवर्तन आ गया है। परिवार का आकार दिन-प्रतिदिन सीमित होता जा रहा है। व्यक्तिवादिता का विकास हो रहा है। व्यक्ति अब स्वयं अपने बारे में अधिक सोचने लगा है और परिवार के उत्तरदायित्व की भावना में कमी आ रही है। विभिन्न कारणों से परिवार के कार्यो के लिए आजकल अन्य संस्थाएँ आगे आने लगी हैं। संस्थाओं का महत्व बढ़ने लगा है और परिवार का उत्तरदायित्व सीमित और स्वकेन्द्रित होने लगा है। स्त्रियों की आर्थिक स्वतंत्रता के कारण परिवार में धन की वृद्धि होने के साथ परिवार का पुराना ढाँचा, जिसमें पुरूष पर ही अर्थोपार्जन की जिम्मेदारी थी, वह परंपरा आज बदल गई है। आज परिवार का हर सदस्य आत्म निर्भरता प्राप्त करना चाहता है। इस तरह परिवार में अनेक परिवर्तन आये जैसे -

(१) आर्थिक कार्यों में परिवर्तन
(२) धार्मिक कार्यों में परिवर्तन
(३) सामाजिक एवं सांस्कृतिक कार्यों में परिवर्तन
(४) मनोरंजन सम्बन्धी कार्यो में परिवर्तन

(१) औद्योगिकीकरण के पूर्व परिवार ही आर्थिक कार्यो का केन्द्र था। परिवार

में ही उत्पादन होता था तथा प्रत्येक व्यक्ति उसका उपयोग करता था लेकिन औद्योगिकरण के कारण आज बहुत से कार्य कारखानों और फेक्टरियों में होने लगे हैं इससे व्यक्ति अपनी योग्यता और क्षमता के अनुसार करते हैं और उन्हें इस कार्य के लिए स्थानांतरित होना पड़ता है। अब सामूहिक सम्पत्ति को नहीं बल्कि व्यक्तिगत सम्पत्ति को महत्व दिया जाता है। आजकल स्त्रियाँ भी आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर हो रही हैं। आर्थिक स्वतंत्रता के कारण उनका लगाव परिवार से कम होने लगा है।

(२) भारत में पारिवारिक संगठन का एक प्रमुख आधार धर्म को भी माना गया है। लेकिन आजकल धर्म का स्थान कपट, तर्क, बेमानी ने ले लिया है। इसलिए धर्म पर से लोगों का विश्वास कम हो गया है और धार्मिक उत्सवों में भी कमी आ गई है। अब लोग धर्म के नाम पर कर्मकाण्डों में विश्वास करके अपना समय बर्बाद नहीं करना चाहते। व्यक्ति अब उन्हीं कार्यों को करता है, जो उसके निजी विकास और स्वार्थसिद्धि के लिए आवश्यक हो। आज विवाह और परिवार भी धार्मिक नहीं परंतु एक समझौता माना जाता है।

(३) आज व्यक्ति की स्थिति का निर्धारण परिवार द्वारा नहीं होता बल्कि व्यक्ति अपने व्यक्तिगत गुणों के आधार पर समाज में अपना स्थान बनाता है। आज-कल परम्पराओं, रुढ़ियों और प्रथाओं का नियंत्रण ढीला पड रहा है। इसके स्थान पर नयें प्रतिमानों को महत्व दिया जा रहा है। परिवार के द्वारा

सांस्कृतिक शिक्षा देना अब महत्वपूर्ण नहीं है। शिक्षा के प्रभाव के कारण तर्क की प्रधानता और संस्कृति के परिवर्तित रूप को अधिक विज्ञापित किया जा रहा है। सामाजिक एवं सांस्कृतिक कार्यो में अब परिवार नियंत्रण बहुत कम हो गया है।

(४) पहले परिवार ही मनोरंजन का केन्द्र समझा जाता था। जहाँ विभिन्न पर्वो, सामाजिक समारोहों का आयोजन करके परिवारों का मनोरंजन हुआ करता था। लेकिन आज इसका स्थान रेड़ियो, सिनेमा, नाटक-मण्डली, क्लब और ज्यादातर टी.वी. ने ले लिया है।

प्राचीन समय में सम्बन्धों का केन्द्र परिवार तक सीमित था। लेकिन वर्तमान युग में परिवार के कार्यों में परिवर्तन हुए और अन्य संस्थाओं द्वारा किये गये कार्यों से व्यक्ति के सम्बन्ध परिवार के बाहर भी पनपते गये। परिवार में प्राचीन मान्यताएँ अभी पूरी तरह समाप्त नहीं हुई हैं लेकिन नयी मान्यताएँ और विचार पनप रहे हैं। इस दुविधा और द्वन्द्व की स्थिति में परिवार में तनाव उत्पन्न होना स्वाभाविक है
।

आज परिस्थिति बहुत बदल चुकी है। शहर और गाँव के बीच औद्योगिकीकरण के कारण ज्यादा से ज्यादा परिवार विघटित हो रहे हैं। व्यक्ति में गाँव को छोड़कर शहर में आने की प्रवृत्ति का विकास हो रहा है। दूसरी तरफ अपने माँ-बाप के प्रति

उत्तरदायित्व का भी उसे ख्याल है लेकिन शहर में आकर व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति मुश्किल से कर पाता है। इससे जुडी 'स्वदेश दीपक' लिखित कहानी 'महामारी' मध्यमवर्गीय आदमी की स्थिति दर्शायी गई है, जो सिर्फ क्लर्क है वह अपना घर जैसे-तैसे चलाता है। बड़े बेटे को अच्छी शिक्षा देता है। वह अच्छे पद पर पहुँच जाता है। साल में एक बार ही दो-चार दिन के लिए वह अपने माँ-बाप के पास आता है लेकिन उनके आते ही एक-एक समस्याएँ सामने आने लगती हैं। बच्ची दिन में तीन-चार बार सिर्फ दूध पीकर रहने वाली है। आदत के अनुसार वह दूध, फ्रूट्स, खीर में बादाम, अंडा आदि की माँग कर बैठती है। इतनी चीजें जुटाना दादा-दादी के लिए संभव नहीं होता, जब वह जिद करके रोती है तो उसके पापा उसको मारते हैं फिर समझाकर खिलाते हैं। सन्तोष को लगता है, अभावों की मार सच ही जल्दी समझा देती है। छोटी बच्ची है, कोई सन्दर्भ नहीं समझती। किसी तरह का कुछ ज्ञान नहीं फिर भी एक बार मार खाकर समझ गयी है। मगर अभावों से घिरे बैठे चुपचाप जी रहे लोग सदियों से मार खाने के बाद चुप हैं, जो अपना है वह भी नहीं माँगते तो फिर हैरानी कैसी? दोपहर सबके सो जाने के बाद जब दादी दादा से कहती है मीनू के लिए कुछ चीजें ले आओ वह गुस्से से पागल हो जातै हैं। पैसों की बात पूछने पर वे कहते हैं वही मॉग लूँगा। फिर वह कहती है - "सन्तोष जल्दी वापस जाने के लिए अगर कहे तो उसे रोकना मत। अच्छा करता है, यहाँ नहीं आता।"[3] यह सब सन्तोष सुन लेता है और सोचने लगता है - "माँ का एक-एक शब्द किसी 'महामारी' के कीटाणुओं की तरह सरसराता हुआ सन्तोष के शरीर में प्रवेश कर रहा है। फिर उसे लगता

है कि ये कीटाणु दरवाजे से बाहर निकल रहे हैं, निकलकर आस-पास के पड़ोसियों के घरों में जाकर लोगों के शरीर में घुस गये हैं। घर-घर में शहर-दर-शहर कीटाणु पहुँच चुके हैं। महामारी फैल चुकी है। आदमी की आदमी से, माँ की बच्चों से, पिता के बेटों-बेटियों से सम्बन्ध काटती महामारी।"[4]

आज जैसे-जैसे औद्योगिकीकरण बढ़ता जा रहा है, इस यंत्रयुग में मानव एक-दूसरे से कटता चला जा रहा है। विभक्त परिवार और पिता, माँ, बेटा, बहू, पोती, इनके सम्बन्धों को किसी तरह बनाए रखते हैं। 'महामारी' के कीटाणु की तरह इन सम्बन्ध विच्छेद के कीटाणु भी पहुँच रहे हैं। इसका एक मात्र कारण परिवर्तनजन्य स्थिति। दादा-दादी अपनी शहर से आयी हुई लाड़ली पोती के लिये जरूरी चीजें नहीं ला पाते। सन्तोष के लिए माँ कितने ही खत लिखवाकर बुलाती है लेकिन आने पर उनके लिए जरुरी चीजें भी नहीं जुटा पाती। ऊपर से खुश हो जाते हैं लेकिन मन ही मन उन्हें खर्चे की चिन्ता है। बहू भी सोचती है हम इनके लिए पैसे भेज देंगे, लेकिन आजकल हर कोई नौकरी से मिलनेवाली सीमित आय से सिर्फ अपना ही घर मुश्किल से चला पाता है। सन्तोष उसी दिन जाने की तैयारी करता है, निकलने पर जब दादी रोती है तो मीनू समझाती है मैं अगली बार रोऊँगी नहीं, कुछ नहीं माँगूंगी। दादी, अच्छे बच्चे नहीं रोते और अन्त में मीनू का बाय-बाय करता हुआ हाथ दादा-दादी देखते रहते हैं।

वर्तमान समाज में परिवर्तित बदलते स्वरूपों की नई कहानी में परिवेश का

चित्रण परिवार और समाज के विभिन्न सम्बन्धों को लेकर हुआ है। पति-पत्नी के संबंधों में युग के बदलते सन्दर्भो के कारण अनेक समस्याएँ खडी हुई हैं। वैवाहिक मान्यताएँ बदलने लगी हैं, जिससे "व्यक्ति-व्यक्ति के सम्बन्धों में सबसे अधिक जटिल, नाटकीय और अनिवार्य सम्बन्ध, स्त्री-पुरूष का आपसी सन्बन्ध, रूचि-भिन्नता, व्यक्ति-सत्ता की चेतना, जीवन-स्तर में असमानता एव अर्थ-संकट पति-पत्नी के सम्बन्धों को असंतुलित कर देता है। आज परिस्थितियॉ बदल गई हं।"[5] आज हर सम्बन्ध में परिवर्तन आ गया है। शिक्षित, दम्पत्ति इच्छाओं और परिस्थितियों के कारण तनाव और टूटन के यातनामय संकट को भोग रहे हैं। जीवन की विसंगतियों से उत्पन्न यह पीड़ाबोध राकेश की कहानियों में सबसे अधिक व्यक्त हुआ है। जिससे दाम्पत्य जीवन में कटुता, रिक्तता, अकेलापन, अपरिचित ऊब और उदासी की स्थितियाँ अधिक पैदा हो रही हैं। वर्तमान समाज के परिवर्तित स्त्री-पुरूषों के सम्बन्धों को कटु यथार्थ धरातल पर उकसाते हैं, जहॉ सब मधुर ही नहीं है, मजबूरियाँ भी हैं। स्त्री-पुरूष के आपसी सम्बन्धों में दबे-घुटे स्वर भी हैं। इस प्रकार की कहानियों में मोहन राकेश की 'एक और जिन्दगी', 'सुहागिनें', मन्नू भंडारी की 'नशा' आदि प्रमुख हैं।

एक और जिन्दगी : इस कहानी में नये और पुराने मूल्यों की टकराहट है। विवाह भले ही एक सामाजिक संस्था है, किन्तु आज यदि पति-पत्नी में किसी बात को लेकर मन-मुटाव हो जाए तो दोनों का साथ रहना असंभव हो जाता है और सम्बन्ध-विच्छेद भी हो सकता है।

'एक और जिंदगी' मोहन राकेश की कहानी में पति-पत्नी के सम्बन्धों की त्रासद स्थितियों से परिपूर्ण प्रस्तुत कहानी विवाह-बंधन में बंधे दंपत्ति के वियुक्त हो जाने की व्यथा को उजागर करती है। प्रस्तुत कहानी में प्रकाश और बीना पति-पत्नी हैं। विवाह के कुछ महिने बाद से ही पति-पत्नी अलग रहने लगे थे। विवाह के साथ जो सूत्र जुड़ना चाहिए था वह जुड़ नहीं सका था। दोनों अलग-अलग जगह काम करते थे और अपना-अपना स्वतनत्र ताना-बाना बुनकर जी रहे थे। आज स्त्री-पुरूष दोनों ही वैयक्तिक स्वतंत्रता के पक्षपाती हैं। मनुष्य छूटी हुई जिन्दगी और चुनी हुई जिन्दगी दोनों के बीच अपने आपको मानसिक रूप से क्षत-विक्षत अनुभव करता है।कहानी के अंत में प्रकाश का वर्षा में भीगते हुए एक कुत्ते के साथ चलना स्वस्थ संकेत देता है जिससे यह कहानी आज के नगरीय जीवन की जटिलताओं में से गुजरते हुए व्यक्ति को बेहतर जिंदगी की खोज में आगे बढ़ते रहने का व्यक्तिनिष्ठ संकेत भी देती है। आज के परिवर्तित युग में मोहन राकेश की 'एक और जिन्दगी' जीवन के दूसरे जीवन या मुक्ति की नहीं जिन्दगी के बीच की एक और जिन्दगी की तलाश की कहानी है। एक उभरते अभाव की पूर्ति दूसरी में ढूँढने की ललक की कहानी है।"[6]

सुहागिनें : यह कहानी पढ़े-लिखे स्त्री-पुरूष के सम्बन्धों की कहानी है। मनोरमा एक सुशिक्षित नारी है जो नौकरी करती है। लेकिन वह नौकरी पति के दबाव के कारण करती है। मनोरमा का पति सुशील अपने छोटे संयुक्त परिवार में रहता है। वह अपनी छोटी बहन के विवाह के लिए दहेज जुटाने के लिए दबाव

डालता है। मनोरमा स्कूल की मुख्याध्यापिका होते हुए भी भीतरसे बहुत अकेली है। मनोरमा को वियोग की भावनाओं से अपनी इच्छाओं का भी दमन करना पडता है। परिवार के प्रति दायित्वों को निभाने के लिए सुहागिन होते हुए भी उसे समय पर बच्चों को जन्म देने का विचार स्थगित रखना पड़ता है। 'सुहागिनें' प्रतीक रूप में परिवार के मुख्य कार्य से विचलित होने की कहानी है। परिवार का आर्थिक भार वहन करने के लिए परिवर्तित समाज में पत्नी की भूमिका भी बदलती जा रही है। पूर्ण आश्रित होने के स्थान पर वह केवल एक प्रजनन यंत्र न होकर पति को सहयोग तो करती है किन्तु उसकी स्वाभाविक इच्छाएँ दमित रह जाती हैं।

आज पति-पत्नी की भूमिका में ही बदलाव नहीं आया है, स्त्री-पुरूष के आपसी सम्बन्धों में भी बदलाव आया है। युग परिवर्तन के साथ-साथ संस्कृति के मानदंड भी बदल गये हैं। पति-पत्नी सम्बन्धों का पुरातन स्वरूप किसी सीमा तक अर्थहीन पड़ने लगा क्योंकि स्वार्थपरता, वैयक्तिक सुख, भौतिकता और आर्थिक कारणों से ये सम्बन्ध सर्वाधिक पीड़ित हैं। पति-पत्नी का संयुक्त जीवन यदि महत्वपूर्ण है, तो उनका अपना-अपना व्यक्तिगत जीवन भी कम महत्व नहीं रखता है। सम्पूर्ण समाज में बदलाव का प्रभाव दम्पत्ति पर भी पड़ता है। आखिर वे इसी समाज के प्राणी हैं, अतः परिवर्तन से अछूते नहीं रह सकते।

दम्पत्ति परिवार संस्था का महत्वपूर्ण अंग हैं और किसी न किसी रूप में

परिवार का समाजिक महत्व बना ही रहेगा। दाम्पत्य-सम्बन्ध परिवार संस्था की आधारशिला हैं। दाम्पत्य सम्बन्धों की चटखन से परिवार बिखर जाता है और इन्हीं सम्बन्धों की मधुरता या कटुता जीवन को स्वर्ग या नरक बना देती है। पति-पत्नी आज आत्म-सुख को अधिक महत्व देने लगे हैं। परिवारों के टूटने का यही मुख्य कारण है। दाम्पत्य-सम्बन्धों में भोग ही प्रधान हो गया है। एक ओर नववधुओं पर दहेज के लिए अत्याचार, मार-पीट और हत्याएँ तक होती हैं तो दूसरी तरफ पश्चिमी संस्कृति का अनुकरण करके दाम्पत्य सम्बन्धों में बिखराव आ गया है। मृदुला गर्ग की कहानी 'हरी बिन्दी' दाम्पत्य सम्बन्धों में परिवर्तन की एक नई मानसिकता से जुड़ी कहानी है।

विवाह के कुछ समय उपरांत एकरस जीवन जीते-जीते पति-पत्नी एक दूसरे से ऊब महसूस करते हैं। पति घर से बाहर आता-जाता है। मित्रों से मिलने-जुलने, काम-काज में उसकी ऊब और मन की घुटन कम हो जाती है, परन्तु घर की सीमाओं में बँधी स्त्री क्या करे?

'हरी बिन्दी' की नायिका का पति राजन कल रात दिल्ली चला गया है। पति की अनुपस्थिति में परम्परावादी विरहिणी नारी के समान दुःखी न होकर अपने के उन्मुक्त महसूस करती है। सोचती है कि आज का दिन बेकार न जाने दूँगी।

स्नान करके नीला कुरता-पाजामा पहनती है और मैचिंग बिन्दी न लगाकर

वह हरी बिन्दी लगाती है। सबसे पहले वह जहाँगीर आर्ट गैलरी में प्रदर्शनी देखती है। एक रेस्तराँ में गरमागरम टिकिया की प्लेट और आईस्क्रीम साथ-साथ मँगवाती है। 'डैनी के' की पिक्चर देखती है। यद्यपि यह सब राजन की पसंद के विरुद्ध है। पुरूष की सत्ता से आधुनिक नारी अलग जीना चाहती है।

'ज्ञान रंजन' की कहानी 'हास्य रस' में युवा वर्ग पश्चिमी संस्कृति के प्रभाव से, स्वेच्छा से विवाह करना उचित समझता है। परन्तु वंशानुगत संस्कारों से यकायक छुटकारा पाना संभव नहीं होता है।

यही संक्रमण की स्थिति है। युवा वर्ग की विवाह-संबंधी अवधारणा बदली है, परन्तु वह अपने परिवार को भी खोना नहीं चाहता है। यही खोने-पाने की स्थिति पति-पत्नी संबंधों को किस कदर प्रभावित कर देती है। रवीन्द्र वालिया की 'मौत' कहानी में दाम्पत्य-संबंधों में प्रेम का स्थान स्वार्थ और लोभ ने ले लिया है। पति-पत्नी संबंधों का आधार आर्थिक स्थिति होता जा रहा है। पति की मृत्यु होने पर पत्नी को चिंता होती है - पति की जेब से पर्स, चाबियॉ आदि निकालने की। बीमा पॉलिसी से कितना पैसा मिलेगा? आखिर उसे अपने और संतान का भरण-पोषण तो करना ही है। अपार दुःख के समय भी वह इम्पोर्टेड जार्जट की साडी पहने है और पति के मित्र की हमदर्दी पाने के लिए वह धीरे-धीरे उसेक बिलकुल निकट चली जाती है।

दाम्पत्य जीवन-मूल्यों का विघटन स्वार्थी पत्नी के चरित्र द्वारा प्रस्तुत किया गया है। मोहन राकेश की कहानी 'एक और जिन्दगी' भी पति-पत्नी सम्बन्धों की त्रासद स्थितियों से परिपूर्ण कहानी है। विवाह सम्बन्धों में बँधे दम्पत्ति के वियुक्त हो जाने की व्यथा को उजाकर करती है। राजी सेठ की कहानी 'अन्धे मोड़ से आगे' पति-पत्नी सम्बन्धों को एक नये धरातल पर व्यक्त करती है। प्रस्तुत कहानी में पति सुरजीत पत्नी की उपेक्षा करता है, उसे मारता-पीटता भी है। परिणाम स्वरूप पत्नी का अपने बॉस मिश्रा के प्रति आकर्षण हो जाता है। मिश्रा की जिद से वह सुरजीत से तलाक ले लेती है, और इधर सुरजीत है कि विरोध, अवरोध, प्रतिरोध, अधिकार प्रदर्शन कुछ भी नहीं करता है।

राजी सेठ ने नारी के मन के एक बड़े परिवर्तन को प्रकाशित किया है। वह मिश्रा की संतान की माँ नहीं बनना चाहती है, क्योंकि कहीं-कहीं हमारे संस्कार हमें बाँधे रखना चाहते हैं। । उसे अपनी कोख की संतान से मोह अवश्य होता है किन्तु उसकी सोच उसे रोकती अवश्य है। 'यह शील भंग का मामला है, उसका यह द्रढ़तापूर्वक कहना नारी की बदली मानसिकता को रेखांकित करता है। इसी तरह 'राजेन्द्र यादव' की कहानी 'टूटना' बदलते सामाजिक परिवेश में पति-पत्नी के सम्बन्धों को व्यक्त करती है। लीना और किशोर परस्पर विवाह कर लेते हैं। लीना बड़े बाप की बेटी है। किशोर विवाह के बाद सहज नहीं हो पाता है और वह अपने आप को छोटा समझता है। पारस्परिक सामंजस्य न होने के कारण पति-पत्नी अलग हो जाते हैं। लीना और किशोर दो वर्गो के प्रतीक हैं, जिनकी शिक्षा और

संस्कार भिन्न-भिन्न हैं। यह आर्थिक और सांस्कृतिक वैषम्य उनके विवाहित सम्बन्धों को तोड़ देता है। छठे दशक के बाद से सामाजिक परिवेश बहुत तेजी से बदल रहा है। स्थितियाँ बदल गई हैं, परन्तु संस्कार अभी भी पूर्णरूपेण नहीं बदल सके हैं। हमारी संस्कृति के अनुसार पति-पत्नी अलग होकर भी अलग नहीं हो पाते हैं, क्योंकि विवाह अटूट बंधन है। इस संस्कार से एकदम मुक्ति पा लेना सरल नहीं है। पति-पत्नी अलग होकर, एक रिक्तता, एक खालीपन कहीं न कहीं जीवनभर महसूस करते रहते हैं। आज महानगरीय जीवन की व्यस्तता के कारण पति-पत्नी के संबंधों में ऊबन बहुत जल्दी आ जाती है। इसी विचार से जुड़ी कमलेश्वर की कहानी 'खोयी हुई दिशायें' भी वस्तुतः दर्शाती है कि महानगरीय जीवन की व्यस्तता और औपचारिकतायें भी पति-पत्नी के सम्बन्धों को तोड़ देती हैं। वे एक दूसरे के लिए अपरिचित से हो जाते हैं। कोई न किसी को जानता है, न पहचानता है। महानगरीय जीवन में पति-पत्नी अपने क्षेत्र में इतने व्यस्त रहते हैं कि कुछ क्षणों के लिए ही आत्मीयता और एक-दूसरे के निकट आने का अवसर उन्हें मिलता है। महानगर के व्यस्त, यंत्रवत और एकरस जीवन में पति-पत्नी के सम्बन्धों की मधुरता कहीं खो जाती है। उनमें ठंडापन आ जाता है। पति की घर से बाहर व्यस्तता और पत्नी की घरेलू दिनचर्या दोनों को ऊब से भर देती है। भारतीय संयुक्त परिवार की संरचना शताब्दियों से चली आ रही सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक परिवर्तनों के बीच कुछ स्थाई बनी हुई है, फिर भी इन परिवर्तनों ने पारिवारिक जीवन के प्रतिमान को प्रभावित किया है।

शैक्षिक, नगरीय औद्योगिक और तकनीकी प्रगति ने परिवार के सदस्यों -

विशेष रूप से पति-पत्नी, माता-पिता और बच्चों के सामने नई भूमिकाएँ प्रस्तुत की हैं, जिसके परिणाम स्वरूप पारम्परिक पारिवारिक मूल्य विघटित हुए हैं। नई समस्याएँ खड़ी हुई हैं। मुख्य रूप से पति की प्रधानता और पत्नी की परवशता (Husband's dominance & wife's submission) का पारम्परिक स्वरूप बहुत अधिक परिवर्तित हो गया है। इनके बीच अब बराबरी और समानता की बात आती जा रही है और इसी बिन्दु से पारिवारिक तनाव या संघर्ष का सूत्रपात होता है। एक ओर पुरूष स्वेच्छा से अपनी प्रधानता और सत्ता को छोड़ने के इच्छुक नहीं है तो दूसरी ओर स्त्रियाँ भी बाह्य दायित्वों को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं। इन्हीं से जुड़ी मोहन राकेश की कहानी 'सुहागिनें' में मनोरमा सचदेवा स्कूल की हैडमिस्ट्रेस है, वह पति सुशील से अलग रहकर नौकरी करती है। यद्यपि वह अलग रहना कदापि पसंद नहीं करती। पति की विवशता है, बहिन उम्मी का विवाह करना है, पूरी गृहस्थी चलानी है। अतः पारिवारिक दायित्व का निर्वाह करने के लिए तथा पति को पूर्ण सहयोग देने के विचार से अलग रहना स्वीकार करना पड़ता है।"[7] भारतीय समाज में पति और पत्नी की मानसिकता आज भी वैसी ही परम्परागत है जिसमें पुरूष और स्त्री के कार्यक्षेत्र बँटे हुए होते हैं, फिर भी आधुनिक शिक्षित पति समानता और साहचर्य (Companionship) का दिखावा करते हुए एक विरोधाभास के कारण तनाव को बढ़ावा दे रहा है।

आज के परिवर्तनशील समाज ने दाम्पत्य-सम्बन्धों के भी कुछ बिन्दुओं को स्पर्श किया है। पति-पत्नी को कभी अपने मूल निवास स्थान से नये परिवेश में

बसना पडता है और वहाँ अनुकूलन की कठिन प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है या कभी ऐसा होता है कि पति को आजीविका हेतु घर से दूर रहना पड़ता है। मन्नू भंडारी की कहानी 'शायद' इसी समस्या से जुड़ी है। नायक राखल समुद्र पर नौकरी करता है। वह परिवार को घर खर्च भेजता है, इतना ही पर्याप्त है। इतना ही सम्बन्ध अब परिवारवालों के साथ रह गया है। वह पत्नी के लिए भावनात्मक रूप से उपस्थित रहता है, परन्तु सशरीर नहीं। ये भावनात्मक सम्बन्ध ही दोनों को जोड़े हुए हैं।

'शायद' में आर्थिक विवशता से उत्पन्न दाम्पत्य-सम्बन्धों के बदलाव को रूपायित किया है। उसकी अनुपस्थिति में माला ने सब के साथ अपने सम्बन्ध बनाये हैं, जिनके लिए वह आभारी है। राखल को छुट्टी पूरी होने पर पुनः नौकरी पर वापस जाना है और माला को इन 'सम्बन्धों' के मध्य जीना है। जिनसे पति-पत्नी के एक-दूसरे को प्रमाणित करनेवाले सम्बन्ध समाप्त हो जाते हैं।

"निःसन्देह पारिवारिक स्थायित्व के लिए वैवाहिक सम्बन्धों की स्थिरता एक आवश्यक शर्त है लेकिन आज के बदले हुए सामाजिक परिवेश में वैवाहिक सम्बन्धों की स्थिरता पर एक प्रश्न चिह्न लग गया है। विवाह के प्रति स्वाभाविक आकर्षण कम होता जा रहा है और आज विवाह सुख प्राप्ति का एक साधन बनकर रह गया है। यही कारण है कि जब तक वैवाहिक सम्बन्ध सुख प्राप्ति में सहायक होते हैं, ये अच्छे माने जाते हैं और स्वीकार्य होते हैं। जब यह सम्बन्ध पति-पत्नी

में से किसी के लिए भी सुख-प्राप्ति में बाधक बन जाते हैं तो इन वैवाहिक सम्बन्धों का कोई महत्व नहीं रह जाता है। तब से सम्बन्ध पारस्परिक तनाव या संघर्ष को उत्पन्न करने लगते हैं, जिसकी इति वैवाहिक सम्बन्धों के टूटने में होती है। पति-पत्नी के बीच ऐसा कुसमायोजन (maladjustment) पारिवारिक जीवन की अहम् समस्या बन गया है।"[8]

परिवार में तनाव दो प्रकार का देखने को मिलता है। प्रथम तो व्यक्ति जन्य तनाव है जो पारिवारिक सदस्यों विशेषकर पति-पत्नी के व्यक्तिगत स्वभाव, जीवन-दर्शन, व्यवहार प्रतिमान आदि में पायी जाने वाली असमानता या मानसिक विकृतियों के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं। दूसरे प्रकार का तनाव परिस्थितिजन्य है जो परिस्थितियों और दशाओं में होनेवाले परिवर्तनों या असमानताओं का परिणाम होते हैं। समाज में होने वाले सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों का जो सीधा प्रभाव परिवार की संरचना और कार्यप्रणाली पर पड़ा है, उसके परिणामस्वरूप अनेक नई भूमिकायें और अपेक्षायें सामने आयी हैं। परम्परात्मक समाज में पति-पत्नी की भूमिकायें परम्परा द्वारा निर्धारित होती थीं लेकिन समकालीन भारतीय समाज में कानूनी और सामाजिक दृष्टि से समान स्थिति प्राप्त होने से स्त्रियों की परम्परागत स्थिति और भूमिका की अवधारणा ही बदल गई है। प्राप्त प्रगति के अनेक अवसरों और वर्तमान संकटपूर्ण आर्थिक परिस्थितियों ने स्त्री को एक कामकाजी और आर्थिक रूप से स्वतंत्र व्यक्ति की स्थिति प्रदान की है। एक कामकाजी पत्नी की इस अतिरिक्त भूमिका प्राप्त होने

से पत्नी ने अपनी स्थिति को तो ऊँचा उठाया हे लेकिन यह नयी स्थिति उनसे कुछ नयी भूमिकाओं की अपेक्षा करती है। दूसरी ओर परिवारवाले विशेष रूप से पति परम्परागत रूप में पत्नी से एक गृहिणी की भूमिका की अपेक्षा करते हैं। इस प्रकार मध्यमवर्गीय कामकाजी स्त्रियों की भूमिकाओं का पर्याप्त विस्तार हुआ है क्योंकि अब उन्हें परम्परागत भूमिकाओं के अतिरिक्त नई-नई भूमिकायें निभानी पडती हैं। इन स्त्रियों से अपने व्यावसायिक दायित्वों को निभाने के साथ-साथ अपने परिवार को चलाने के लिए जिस दक्षता की अपेक्षा की जाती हैं वह उन पर पर्याप्त मनोवैज्ञानिक दबाव डालती है और उनके जीवन को कठिन तथा तनावग्रस्त बना देती है। केवल कुछ ही स्त्रियों को अपने पति के साथ-साथ परिवार के सदस्यों का सहयोग मिलता है।

आधुनिक शिक्षा और बढ़ती हुई महँगाई के परिणामस्वरूप स्त्रियों के कन्धों पर न केवल पुरूष के समान दायित्व आ पड़ा है बल्कि वह उससे कुछ अधिक बोझ की ही भागीदार बन गई है। आज खुली आर्थिक प्रतियोगिता के युग में स्त्री भी अर्थ प्राप्ति का स्रोत बन गई है और इस स्थिति में दोनों के आपसी कार्य बदल रहे हैं। वैसे सारे मानवीय सम्बन्धों की नींव आर्थिक स्रोत ही है। आर्थिक स्थिति और स्रोत में परिवर्तन होते ही उससे जुड़ी अन्य संकल्पनाओं में भी परिवर्तन हो जाता है। इसी से जुड़ी कहानीकार प्रविणकुमार वंद्योपाध्याय की कहानी 'अश्वमेघ' मे पति बेकार है और पत्नी कमाती है। पति घर में बैठकर बेटी ऋतु को संभालता है और माँ-बेटी दोनों का बहुत ख्याल करता है। मधु रोज रात को देर से आती

है। उसकी थकावट का ख्याल करके वह उसे किसी भी रूप में परेशान नहीं करना चाहता है। पति चाहता है कि वह अपने मित्र के साथ बम्बई घूम आये। मधु के पुरूष के समान ही मित्र हैं जिनके साथ वह घूमती-फिरती है, कहीं कोई विरोध या बाधा नहीं।"[9] इससे उल्टा नौकरी के साथ-साथ उसकी परिवार की व्यवस्था करना उसका दायित्व है। इस दुहरे बोझ के कारण वह पति या घर के अन्य सदस्यों से सहायता की अपेक्षा रखती है लेकिन उसके सामने स्थिति कुछ उलटे ही रूप में उपस्थित होती है। परिणामतः वह न तो घर में सद्‌गृहिणी ही बन पाती है न दफ़्तर में उत्तम कर्मचारिणी है। इन परेशानियों से घबराकर वह यदि नौकरी छोडना भी चाहती है तो उसका पति या अन्य सदस्य छोड़ने नहीं देते। अतः वह न चाहते हुए भी नौकरी करने को विवश है। नारी की इसी विवशता ने उसे तोड़ा है।"[10] नौकरी पेशा स्त्रियों में एक और नया रूप, कुन्दनिका कापड़िया की 'छलना' कहानी में देखने को मिलता है। नायिका पढी-लिखी नौकरी करती कामकाजी महिला है जो शारीरिक रोग से व्यथित है और अपनी व्यथा छिपाने की चेष्टा करती है। सुधा खुद के प्रति ही छल करके वांछित सुख के नशे में पली रहकर अपने गम को भुलाने की कोशिश करती है। उसे कोढ़ जैसा भयंकर शारीरिक रोग है जिसकी वजह से उसका विवाह नहीं हो पाता।"[11]

इसके अलावा कई कामकाजी महिला जो श्रापरूप जीवन जीने के लिए मजबूर है। इसके कारण सहज स्वाभाविक जीवन एक ऐसा अभिशाप बन जाता है जिसके कारण उसके जीवन के सुख, संवेदनाएँ, आशाएं, इच्छाएँ नीरस बन जाती

हैं। मधु राय की 'डमरू' कहानी की तिलोत्तमा की नौकरी के दस साल गुजर गये हैं। पिता की मृत्यु के बाद फर्ज और कर्तव्य को निभाने के लिये उसने नौकरी शुरू की थी। नौकरी करते-करते उनमें रूखापन आ जाता है। उसकी माँ कहती - तिलोत्तमा उनकी बेटी नहीं, बेटा है। यद्यपि कामकाजी महिलाओं के प्रति सामाजिक और पारिवारिक मनोवृत्ति में परिवर्तन आया है किन्तु उनकी गति मन्द और अनियमित है, विशेषरूप से पुरूषों की मानसिकता अभी भी रुढ़िवादी है। कार्यशील स्त्री की अपनी कई समस्याएँ हैं। इन समस्याओं का उभरना इस तथ्य का सूचक है कि समाज में परिवर्तन हर क्षेत्र में तीव्र गति से हो रहा है। आर्थिक विवशता ने स्त्री को कार्य करने के लिए बाध्य किया। आज परिवार स्त्री द्वारा प्राप्त आर्थिक सहायता को बुरा नहीं मानता है क्योंकि भारत में सभी नारियों को शिक्षा और आर्थिक स्वाधीनता नहीं मिली है। आर्थिक पराधीनता अभी बनी हुई है। जो नारियाँ शिक्षित हुई हैं या आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबी हुई हैं, उनके व्यक्तित्व में परिवर्तन हुआ है और सम्बन्धों की परिधि भी व्यापक हुई है। आर्थिक स्वावलम्बन के कारण वैचारिक भिन्नता, शैक्षणिक अन्तर, आय की असमानता, कार्यक्षेत्रों में अन्तर के कारण परिवार में पति-पत्नी के सम्बन्धों में बदलाव एवं विघटन हुआ है। नारी आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी होने के बावजूद भी परिवार से जुडी हुई है। उसे पारिवारिक परम्पराओं, रुढ़ियों, प्रथाओं, मान्यताओं एवं मर्यादाओं से पूर्णतया मुक्ति नहीं मिलती। इसी कारण आज परिवार में तनाव के बाद विघटन होता है। कामकाजी नारी की वजह से आज पति-पत्नी एवं पारिवारिक सम्बन्धों में बदलाव को प्रदर्शित करने वाली कहानियाँ - मोहन राकेश की 'एक और जिन्दगी',

'सुहागिनें', 'रोजगार', कमलेश्वर की 'तलाश', 'देवा की माँ', 'आसक्ति', मन्नू भंडारी की 'क्षय', 'नई नौकरी', 'रानी माँ का चबूतरा', उषा प्रियंवदा की 'दो अंधेरे', 'जिन्दगी और गुलाब के दो फूल', अमरकान्त की 'मूस', मार्कण्डेय की 'कल्याणमन', 'गिरिराज किशोर की 'रिश्ता', रविन्द्र कालिया की 'चाल', 'तफरीह', ममता कालिया की 'बिमारी', महीपसिंह की 'घिरे हुए क्षय', निरुपमा सेवंती की 'माँ यह नौकरी छोड़ दो' आदि हैं जिनमें परिवार की परम्परागत भूमिकाओं से पृथक् स्थितियों के कारण विघटन को दर्शाया गया है।

मन्नू भंडारी की 'क्षय' की कुन्ती स्कूल में अध्यापिका है। वो आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी है परंतु परिवार की जिम्मेदारियों में टूटती जाती है। पापा क्षय रोग से पीडित हैं। छोटा भांई स्कूल में पढ़ने जाता है। पापा और भाई की जिम्मेदारी की वजह से उसे अलग ट्यूशन करना पड़ता है। इस जिम्मेदारी से वह दुःखी हो जाती है, कभी सोचती है 'घूमना-फिरना', सैर-सपाटे, हँसी-मजाक.... उसके जीवन में तो यह सब दूर तक भी नहीं है?... क्या कभी भी नहीं होगा? क्या उसका सारा जीवन यों ही निकल जायेगा? जितना रूपया कमाती है, उसमें वह ठाठ से रह सकती है। पापा क्या कभी ठीक नहीं होंगे? कितने दिनों तक वे इस तरह पडे रहेंगे? ... सच, अब तो वह ऊब गई है।"[12]

कुन्ती आर्थिक दृष्टि से स्वाधीन होने पर भी पराधीन बनी रहती है। जहाँ एक ओर भारत में बेटी की कमाई खाना बुरा माना जाता था आज उसी बेटी को

स्वयं कमाकर पारिवारिक जिम्मेदारियों को भी सम्भालना पड़ता है।

परम्परागत भारतीय समाज में पारिवारिक स्थायित्व के लिए वैवाहिक सम्बन्धों की स्थिरता एक आवश्यक शर्त है। इससे जुड़ी रामजी कड़िया का कहानी संग्रह 'ढांकेली हथेळीओ' में नारी हृदय के संवेदनों को प्रस्तुत किया है। 'वळांक' कहानी में माधवी और कमलेश में संतान न होने के कारण तनाव और उसके बाद विघटन किन्तु उसके बाद भी माधवी के मन में कमलेश के प्रति लगाव बरकरार रहता है। कमलेश का एक्सीडन्ट होने पर अपने पैर पर खड़े न होने के कारण पतिव्रता माधवी पति के पास वापस चली जाती है।"[13] आज के परिवर्तित काल में माधवी की तरह कई नारियाँ हैं जो अपने पति को नहीं छोड़ सकतीं। 'देवजीभाई खोखर' का वार्ता संग्रह 'वेची नांखेलो माणस' में कहानी 'ओरतों' में रघा पटेल की मृत्यु हो जाने के बाद बेटों का विघटित होना और अलग-अलग कमरे ले लेना पर माँ को कोई अपने साथ नहीं रखना चाहता तब मृत छोटे बेटे की पत्नी माँ को अपने कमरे में रखती है। सास-बहू एक कमरे में रहकर आने वाले दिनों की विकट परिस्थितियों के साथ संघर्षमय जिंदगी झेलती हुई नजर आती हैं।"[14] आज इस परिवर्तित युग में हर बहू चाहती है एकांकी जीवन। मगर यहाँ सास-बहू का साथ-साथ रहना ही अपने आप में एक उदाहरण प्रस्तुत करता है। यही तो नारी का जीवन है। क्योंकि नारी हर दुःख को सहती है इसलिये 'नारी तु नारायणी' कहा गया है। नारी का जीवन ही संघर्षमय है। गुलाबदास ब्रोकर की कहानी 'मां अने दिकरी' माँ और पुत्री के बीच संघर्ष है, क्योंकि माँ और पुत्री का मन एक दूसरे

से बिलकुल अलग है और हर रोज आपस में टकराहट होती है। बेटी तारा न झेल पाने के कारण गुरुकुल में चली जाती है। और परिवार का एक व्यक्ति हमेशा के लिए परिवार छोडकर चला जाता है। यही परिवार पहले साथ रहकर अने परिवार की शान बढ़ाता था मगर वृद्ध माँ के मरने के बाद शहर में बस जाता है।"[15] आज के युग में माता माणेक जो अपनी सगी बेटी के साथ उसकी नहीं बनती वो अपनी सास और परिवार के अन्य लोगों को अपनापन कैसे जतायेगी। यही आज के परिवारों की तासीर है एक ओर आज सास-बहू के रिश्तों को कोई नहीं समझ पाता है। तो दूसरी ओर कुन्दनिका कापड़िया का वार्ता संग्रह 'जवा दईशुं तमने' में जीवन के अंतिम पलों में पुत्रवधू मारिया जो विदेश में रहती है उसके साथ आत्मीयता हो जाती है। सास का जीवन अब अस्त होने को आया है, तब उसे अपनी बहू का अत्यंत सुंदर स्वभाव उसके मन के संबंधों के नये प्रकाश को महसूस करता है। कुन्दनिकाजी की एक और कहानी 'अभाव' में भी जिंदगी को अलग तरीके से जीते हुए पति-पत्नी का तनाव-विघटन और दुबारा एक होने की कथा प्रस्तुत की गई है।

वर्तमान युग में स्त्रियाों की शिक्षा के साथ-साथ विविध व्यवसायों में उनका प्रवेश हुआ है। भले ही वे काम कर रही हैं, साथ-साथ उसको एक गृहिणी की और पत्नी, माता, पुत्रवधु के रूप में भी अपना कर्तव्य निभाना पडता है। और उन दोनों भूमिकाओं में कभी संघर्ष हो जाता है।

साठोत्तरी हिन्दी और गुजराती के कुछ कहानीकारों ने दुहरी-तिहरी जिम्मेदारियों के बीच संघर्षशील नारी-जीवन को पूरी सच्चाई के साथ उभारने का प्रयास किया है। आज की इन कहानियों में आर्थिक संकट से मुक्ति पाने के लिए स्वतंत्र एवं अच्छी जिन्दगी जीने के लिये या परिवार की ढेर सारी अपेक्षाओं की पूर्ति के लिये नारी नौकरी करती है यह दिखलाने का प्रयास किया गया है।

नई पीढ़ी और पुरानी पीढी की खाई आज भी हमारे परिवारों को खाये जा रही है। मन्नू भंडारी की 'त्रिशंकु' की मम्मी आधुनिकता और मुक्त वातावरण को अधिक महत्व देती है तो दूसरी ओर परिवर्तित युग की भी बात करती है। अपनी बेटी को स्वतंत्र रहकर सबसे मिलने-जुलने और बोलने नहीं देती। और मकान के सामने रहनेवाले कॉलेज के विद्यार्थियों के साथ दोस्ती करवाकर अपने स्वतंत्र परिवर्तित मिजाज का परिचय देती है।"[16]

इसके विपरीत सुमीता जैन की 'उन्हें जाने दो' की शीला पढ़ी-लिखी सभ्य और उदार विचारोंवाली तीन बच्चों की माँ है। शीला के पास वह व्यकितत्व और चातुर्य है कि अच्छे-अच्छे को वह अपनी ओर खींच लेती है। किसी भी प्रकार की संकीर्णता अथवा पूर्वाग्रह से मुक्त रूप धन और सुरुचि संपन्न इस दुनिया में वह खूब बेखबरी से जी रही थी। एक दिन वह अनुभव करती है कि वह सभा-संस्थाओं में अपने व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा करती रही और घर, बच्चे टेप-रिकार्डर और रिकार्ड प्लेयर में डूबते रहे , और शीला से बात करने की भी आवश्यकता नहीं समझते थे। तब शीला को लगा इस शिक्षा-लिखाई-पढ़ाई के कारण बाहरी जगत

में हंसती, यश बटोरती माँ के लिये बच्चे अजनबी होते जा रहे हैं। अब घर में शीला फालतू अनाकर्षक चीज़ है, और उसकी उपस्थिति बच्चों का गला घोंटती है। यह समस्या आज तथाकथित सभी आधुनिकता में डूबे परिवारों की है।

मणिका मोहिनी की शुरुआत की नायिका का विवाह प्रेम लग्न है। अपने साथ वह तगडा दहेज नहीं लाई है। इसलिये घर की एक कोठरी में लाल सुहाग का चूड़ा पहनकर वह झाडू लगाती है क्योंकि सुहागरात के लिए कोई प्रबन्ध करना आवश्यक नहीं समझता। वह स्वयं खुरदरी चारपाई पर आँसुओं का बिस्तर बिछाकर अपनी सुहागरात मनाती है। जीवन के ऐसे ही चिरस्मरणीय क्षणों की दुखद स्मृतियाँ परिवार के प्रति कटुता उत्पन्न कर देते हैं। संयुक्त परिवारों में एक-दूसरे के प्रति लगाव के कारण जीवन के ऐसे क्षणों को रीति-रिवाज़ और रस्मों में बाँधकर इस प्रकार मनोरम और अविस्मरणीय बना दिया जाता था, उससे जीवन-पर्यन्त एक आत्मीयता पनपती रहती थी किन्तु आज उन्हीं के अभाव और यांत्रिकता के कारण एक स्थायी उदासीनता संबंधों में प्रविष्ट हो जाती है। यहाँ परिवर्तित समाज से परिवार के सदस्यों का कोई लेना-देना नहीं है। और इसी कारण परिवार बिखर रहे हैं। इस प्रकार प्रगतिशीलता और परंपरा की खींचातानी में समाज की आधारभूत संस्था, परिवार का विघटन हो रहा है।

आज हर क्षेत्र में परिवर्तन आया है। परिवार के आर्थिक कार्यों मे भी बहुत अधिक परिवर्तन हुआ है। "आज औद्योगिक क्षेत्र में स्त्री-पुरुष साथ-साथ कार्य करते हैं और स्वतंत्र रहते हैं। उनकी इसी भावना ने भी इन परिवारों को विघटित

करने में योग दिया है। आधुनिक अर्थव्यवस्था में संयुक्त परिवार के प्रति आस्था कम होने के कारण ही न तो संयुक्त परिवार है और न पूर्ण रूप से वैयक्तिक ही।"[17]

आज परिवार केवल उपभोग की एक इकाई रह गया है। आधुनिक उपकरणों ने महिलाओं को घर के बाहर कार्य करने के अवसर उपलब्ध कराए हैं। अधिकांश मध्यमवर्गीय परिवार आज होटल, भोजनालय, बेकरियों, लॉण्ड्रियों का बहुलता से प्रयोग करने लगे हैं। इस की वजह से आज लोग होटल में ही खाना खाना पसंद करते हैं और घर में झंझट से बचना चाहते हैं। परिवार के अन्य सदस्यों को व्यावसायिक शिक्षा मिलने के कारण माता-पिताके अधिकारों में कमी आ गई है। वार्नस ने लिखा है - "परम्परागत परिवारों के महत्व में कमी आने के कारणों में आधुनिक औद्योगिकता के कारण हुए आर्थिक विकास, महिलाओं की बढ़ती हुई आर्थिक स्वतन्त्रण एवं जीवन का धर्म-निरपेक्ष दृष्टिकोण आदि मुख्य कारण हैं जिन्होंने परम्परागत परिवारों के अधिकारयुक्त धार्मिक आधारें को चुनौतियाँ दी हैं।"[18] हाँ, आधुनिकीकरण के साथ ही समाज में परिवर्तन होने लगा। स्वतन्त्रता से पूर्व प्रेमचन्दोत्तर कहानीकार परिवेश की यथार्थता से कटकर कहानियाँ लिख रहे थे। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद देश में राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक स्तर पर महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए, जिनके कारण तत्कालीन लेखकों ने इस परिवेश के दबाव का अनुभव किया। नये कहानीकारों ने जीवन की सच्चाई को आन्तरिक जटिलता और संश्लिष्टता के साथ उभारने की कोशिश की। गाँव और नगर दोनों के यथार्थ जीवन को रूपान्तरित करने तथा खोखले एवं थोथे आदर्शो को छोड़कर नये जीवन-मूल्यों की स्थापना का संकल्प मिलता है।

आधुनिक साहित्य में संयुक्त परिवार के विघटन को अत्यन्त सूक्ष्मता से अंकित किया गया है। संयुक्त परिवार धीरे-धीरे अतीत बनने लगा है। अब तो विघटन की यह प्रक्रिया एकाकी परिवारों तक भी जा पहुँची है। वर्तमानयुग की पीढ़ी जो किसी निश्चित दिशा को प्राप्त नहीं कर सकी, निरन्तर दमघोंटू अकेलेपन को और उससे पैदा होने वाले ठहराव पर अपना आक्रोश व्यक्त कर रही है। दिप्ति खंडेलवाल की कहानी 'एक और कब्र' में परिवार में व्याप्त कटुता और कलह का चित्रण किया गया है। चित्रा मुद्‌गल की कहानी 'अग्नि रेखा' में व्यक्ति की व्यक्तिवादी प्रवृत्ति आज अर्थ तत्व की परिधि में फँसी हुई है, और परम्परागत भारतीय परिवार के स्वरूप में सिर्फ परिवार का स्वार्थ जुड़ गया है, यह दर्शाया गया है। रिश्ते कच्चे धागे के समान हो गये हैं। ममता, प्रेम आदि का विघटन हो गया है। सुरेन्द्र मन्थन की कहानी टूटते हुए पारिवारिक मूल्यों की ट्रेजेडी है। 'अपने लिए नहीं' कहानी में पिता जीवनभर की कठोर तपस्या के बाद बच्चों को अच्छी से अच्छी शिक्षा दी, उन्हें डॉक्टर, इंजीनियर जैसे सफल केरिअर दिए, परन्तु बदले में उन्हें मिली उपेक्षा। ऐसी स्थिति में बेटी पिता को संभालने की जिम्मेदारी उठाती है, वह अपने भाइयों की नीचता से व्यथित हो उठती है और स्वयं कुँवारी रहकर पिता की सेवा करने का निश्चय करती है। - "जब तक बाऊ जी हैं, मैं शादी नहीं करुँगी,.... अब किसी की कोई बात नहीं सुनी जाएगी। बाऊजी मेरे साथ चलेंगे। इसमें एक इंच का भी हेर-फेर नहीं चलेगा।"[19] कहानी प्रकारांतर से समाज में बेटी की महत्ता को भी प्रतिष्ठित करती है। आज भी समाज मे कई लोग बेटी की तुलना में बेटे का दर्जा श्रेष्ठ मानते हैं। घर की बेटी बुढ़ापे में सहारा देने के लिए किसी बेटे से कम है? कहानी परम्परागत परिवर्तन में यह सोचने को विवश कर देती है। ईश्वर रण सिंहल लिखित 'नहीं, नहीं' कहानी में नायिका मणि परम्परागत

सामाजिक रूढ़ियों की दीवारों को लाँघकर वैधव्य के बोझ को अस्वीकार कर देती है। पति के देहान्त के बाद 'मणि बेटी' 'बहनजी' आदि कहकर सहानुभूति दिखाते हैं। किन्तु बाद में कोई भी उसकी और उसके बेटे की सहायता नहीं करता। इसलिए वह बेटे के लिए नौकरी करती है। विधवा वस्त्र छोड़कर रंगीन साड़ियाँ पहनने लगती हैं और बेटे को पढ़ा-लिखा कर डॉक्टर बना देती है। बेटा शादी के बाद अपनी माँ को भूल जाता है जिस माँ ने समाज की आलोचनाओं और भर्त्सनाओं की परवाह न कर बेटे के भविष्य के लिए अपने जीवन को समर्पित कर दिया, वही बेटा विवाह के बाद उसे अकेला छोड देता है।

आधुनिक युग में रिश्तों का स्वार्थ के अतिरिक्त कोई महत्व नहीं रहा। इसी सन्दर्भ में सविता जैन का वक्तव्य देखिये - "स्वातन्त्र्योत्तर भारत का एक नवीन परिवर्तित रूप में हमारे सामने आता है जहाँ एक ओर परम्परा से चले आ रहे संयुक्त परिवारों का विघटन हो रहा था और दूसरी और सामाजिक-पारिवारिक सम्बन्धों के परम्पराबद्ध रूप में परिवर्तन आ रहा था। परम्परा से विच्छिन्न होकर तथा सभी प्राचीन मानव सम्बन्धों के मोहपाश से मुक्त होकर आज का व्यक्ति अधिकाधिक आत्म-केन्द्रित होता जा रहा है। यहाँ तक कि पिता-पुत्र, माँ-बेटी, पति-पत्नी या भाई-बहन जैसे निकटतम सम्बन्धों मे भी जैसे एक अजनबीपन समाता जा रहा है जो एक-दूसरे के पास रहते हुए भी बहुत दूर कर देता है। स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय समाज का यह एक महत्वपूर्ण परिवर्तन था और इसने समसामयिक कहानीकारों को बहुत अधिक आकर्षित किया।"[20]

सामाजिक स्तर पर शास्वत मूल्यों का क्षय तो हुआ ही है, हमारे परम्परागत

सांस्कृतिक मूल्य भी बुरी तरह बदल गये हैं। परिवर्तन केवल वेशभूषा और खानपान तक ही सीमित नहीं है। पारिवारिक विघटन, दाम्पत्य सम्बन्धों में बिखराव, उन्मुक्त यौन सम्बन्ध आदि सब उसी के परिणाम हैं। इस मूल्य परिवर्तन ने किसी हद तक स्थितियों में सुधार भी किया है। जाति-प्रथा, ऊँच-नीच का भेदभाव, बाल-विवाह, विधवा समस्या आदि पुरानी रूढियाँ जो गल-सड़ गई थीं, अब अपने आप ही समाप्त हो रही हैं।

स्वातंत्र्योत्तर कहानियों में देश के औद्योगिकीकरण से बडे शहरों का निर्माण होने लगा, जिससे आर्थिक परिस्थिति की जटिलता, कुंठा, अकेलापन और घुटन पैदा होने लगे। आर्थिक विपन्नता के कारण समाज की मान्यताओं और जीवन-मूल्यों में परिवर्तन आने लगा। सांस्कृतिक मूल्यों का विघटन तथा आस्थाहीनता के कारण तनाव की स्थिति पैदा होने लगी। परिवर्तित संदर्भ में नये कहानीकार मानवीय सम्बन्ध और उनसे उजागर होने वाली समस्या और परिवार के सदस्य और कार्यों में उठनेवाले विघटन के प्रश्न को लेकर कहानियाँ लिखने लगे और स्वातंत्र्योत्तर जिन्दगी को यथार्थ रूप में मुखरित करने के लिये नई कहानी परिवेश को मूल रूप से समय के साथ बदलते पारिवारिक सम्बन्धों, नयी पुरानी पीढ़ी के संघर्षो, विसंगतियों, सामाजिक विषमताओं, कुंठित मनोवृत्तियों आदि के संदर्भ में नई कहानी ने युग सत्य को पहचानने की उद्घोषणा की और इसी शैक्षिक, नगरीय, औद्योगिक और तकनीकी प्रगतिने परिवार के सदस्यों को विशेष रूप से पति-पत्नी, माता-पिता और बच्चों के सामने नई भूमिकायें प्रस्तुत की हैं जिसके परिणामस्वरूप पारम्परिक पारिवारिक मूल्य विघटित हुए हैं और नई समस्याएँ खड़ी हुई।

****

सन्दर्भ सूचि

1. डॉ. श्रीमती सुनीता श्रीमाल, मोहन राकेश का साहित्य पारिवारिक सम्बन्धों के विघटन की स्थितियाँ - पृ. 61
2. डॉ भैरूलाल गर्ग - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में सामाजिक परिवर्तन- पृ. 156
3. स्वदेश दीपक - महामारी की श्रेष्ठ हिन्दी कहानियाँ - पृ. 165
4. स्वदेश दीपक - महामारी की श्रेष्ठ हिन्दी कहानियाँ - पृ 176
5. मोहन राकेश का कहानी साहित्य : पुनर्मूल्यांकन - डॉ. घनानन्द एम. शर्मा 'जदली', पृ. - 19
6. आधुनिक हिन्दी कहानी : समाजशास्त्रीय द्रष्टि - डॉ. रघुवीरसिंह - पृ. 66
7. समसामयिक कहानी में बदलते पारिवारिक सम्बन्ध (दाम्पत्य-संबंध) - ज्ञानवती अरोडा - पृ. 160
8. सामाजिक तनाव विविध परिद्रश्य - डॉ. सतीशचन्द्र शर्मा, डॉ तरिश भाटियाँ - पृ. 461
9. नई कहानी में आधुनिकता बोध - डॉ. साधना शाह - पृ. 92
10. खामोशी को पीते हुए - निरुपमा सेवती - पृ. 48
11. कागळनी होड़ी -कुन्दनिका कापड़िया
12 मन्नू भंडारी - यही सच है - पृ. 20
13. ढांकेली हथेळीओ - रामजी कडिया - वार्ता 'वळांक'
14. वेची नाखेलो माणस - देवजी खोखर - वार्ता 'ओरतो'
15. ब्रोकरनी श्रेष्ठ वार्ताओ - गुलाबदास ब्रोकर - पृ. 58
16. त्रिशंकु - मन्नू भंडारी
17. अवधेशचन्द्र गुप्त -स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक विचार तत्व- पृ. 88 से उद्धृत
18. डॉ. पोंथन एवं डॉ. टोग्या - परिवार और समाज - पृ. 232
19. सुरेन्द्र मन्थन - अपने लिए नहीं : कहानी, फरवरी 48, पृ. 48
20. डॉ. भेरूलाल गर्ग - स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी में सामाजिक परिवर्तन - पृ. 77